उच्च शिक्षाः असली बदलाव की तस्वीर

पी. बालाराम

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान यानी आईआईटी की संयुक्त प्रवेश परीक्षा (जेईई) लंबे अरसे से व्यापक प्रवेश परीक्षा प्रणालियों में सबसे आगे रही है, जिनका सामना विश्वविद्यालयों और राष्ट्रीय संस्थानों में प्रवेश के अभिलाषी छात्रों को करना पड़ता है। इतने सालों में जेईई की ऐसी छवि बन गई है जो उसकी मेरिट सूची में शीर्ष पर आने वाले छात्रों को एक उपलब्धि का बोध करवाती है। जेईई में उच्च रैंकिंग का मतलब है आईआईटी में प्रवेश।

कई विद्यार्थी कोचिंग के लिए तीन से चार साल तक कड़ी मेहनत करते हैं, तब जाकर उन्हें सफलता हासिल होती है। कोचिंग स्कूलों और उनमें पढ़ाने वाले प्रशिक्षणकर्ताओं ने परीक्षा के लिए छात्रों को तैयार करने में महारत हासिल कर ली है। सफल छात्रों की विविधतापूर्ण सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक पृष्ठभूमि के मद्देनज़र यह कोई आसान काम नहीं है। अनुशासन और जेईई परीक्षा में आने वाले सवालों का सतत अभ्यास इन कोचिंग सेंटर्स की खासियत है। इस अभ्यास का एक नया आयाम है आवासीय कोचिंग सेंटर। अनेक विद्यार्थी अपना पूरा ध्यान प्रवेश परीक्षा पर ही लगाते हैं और बोर्ड परीक्षाओं को बेहद सतही ढंग से लेते हैं। जेईई की परीक्षा में लाखों छात्र बैठते हैं, सफल मुट्ठी भर ही हो पाते हैं। विफल छात्र फिर दूसरी परीक्षाओं में शामिल होते हैं। ऐसी कई परीक्षाएं हैं। सीमित अवसरों के लिए इतनी कड़ी प्रतिस्पर्धा ने इस बहस को जन्म दिया है कि बेहतर उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश के लिए जिन बाधाओं से पार पाना होता है, उससे क्या छात्रों को अत्यधिक तनाव झेलना पढ़ रहा है?

राष्ट्रीय और केंद्रीय सहायता प्राप्त संस्थानों में प्रवेश के लिए दबाव बहुत ज़्यादा होता है। हालांकि राज्य सहायता प्राप्त और अच्छे निजी संस्थानों में भी प्रवेश आसान नहीं होता। कुछ समय पहले केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने प्रवेश परीक्षाओं का बोझ कम करने और कुछ हद तक ही सही, स्कूल बोर्ड परीक्षाओं की महत्ता को स्थापित करने का अभियान चलाया था। जेईई के लिए एक नया फॉर्मूला ईजाद किया गया है, जिससे एक नया विवाद पैदा हो गया है। आरोप लगाए जा रहे हैं कि आईआईटी की जो 'ब्रांड इक्विटी' (पहचान) है, उसे कम करने के प्रयास किए जा रहे हैं। माना जाता है कि किसी संस्थान की प्रतिष्ठा को बढ़ाने में जेईई का बड़ा योगदान होता है। सवाल यह है कि क्या किसी संस्थान की प्रतिष्ठा इस बात पर निर्भर करती है कि उसकी चयन प्रक्रिया कितनी कठोर है या इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपने छात्रों के स्तर में बदलाव के लिए एक महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में कार्य करता है? बहुत अरसा पहले हमारे प्रतिष्ठित आईआईटी में से एक (आईआईटी कानपुर) में प्रवेश लेने वाले स्नातकोत्तर विद्यार्थी बहुत कमज़ोर तरीके से तैयार होकर आते थे। लेकिन संस्थागत तौर-तरीके उन्हें बदलकर रख देते थे और उनके सामने अवसरों की ऐसी खिड़की खुलती थी जो उससे पहले कभी देखने में नहीं आई थी। एक चुनौतीपूर्ण, सुदृढ़ और प्रेरक परिवेश में मैं भी उन छात्रों में से एक था जो विज्ञान के प्रति बेहद आकर्षित था। 1950 और 1960 के दशक में हमारे कई विश्वविद्यालयों में कार्यरत शिक्षक अध्यापन, छात्रों को तैयार करने और अपने स्वयं के विषय में और महारत हासिल करने को लेकर प्रतिबद्ध रहते थे। आज सुधार का मौजूदा अभियान अनेक सतही मुद्दों पर तो ज़ोर दे रहा है, लेकिन हमारे संस्थानों की गुणवत्ता सम्बंधी मुख्य समस्या को हाशिए पर रखे हुए है।

जेईई सम्बंधी अभियान के केंद्र में केवल एक ही मुद्दा थाः अनेक प्रवेश परीक्षाओं को कम करके केवल एक राष्ट्रीय परीक्षा आयोजित करना। इसका घोषित मकसद यही था कि छात्रों के तनाव के स्तर को कम करके स्कूली बोर्ड परीक्षाओं को वेटेज देना, ताकि उनकी अहमियत बढ़े

और कोचिंग केंद्रों के प्रभाव को कम किया जा सके। तनाव दोस्तों और अभिभावकों की ओर से पैदा होता है जो हर छात्र में श्रेष्ठ संस्थान में प्रवेश लेने की लालसा जगाते हैं। अगर संस्थानों की संख्या इतनी ही कम बनी रही और इच्छुक छात्रों की संख्या में इसी तरह से बढ़ोतरी होती रही तो इसमें संदेह ही है कि जेईई का नया अवसार तनाव को कम करने वाला होगा।

इस बात पर लगातार ज़ोर दिया जाता रहा है कि हमें उच्च गुणवत्ता वाले शिक्षा संस्थानों की ज़रूरत है, ताकि हमारे विद्यार्थियों के लिए नए अवसर खुल सकें। विभिन्न आयोगों व समितियों की सिफारिशों और राजनीतिक बाध्यताओं के चलते सरकार ढेर सारे आईआईटी, आईआईएसईआर और केंद्रीय विश्वविद्यालय शुरू करने का ऐलान कर चुकी है। इनमें से कई तो शुरू भी हो चुके हैं, लेकिन पुराने आईआईटी की श्रेणी में इन्हें शामिल किया जाए या नहीं, इसका फैसला समय ही करेगा।

विस्तारीकरण के इस दौर में देश भर में फैले हमारे पुराने संस्थानों और सैकड़ों विश्वविद्यालयों को लेकर शायद ही कहीं कोई सार्वजनिक चर्चा हुई हो। क्या हमारे प्राचीन विश्वविद्यालयों की खोई चमक वापस लाने की संभावनाएं तलाशने की कोशिश की गई? आज़ादी के बाद शुरुआती दौर में दिल्ली, कोलकाता, मद्रास, बाम्बे, पूना, बनारस, अलीगढ़, मैसूर और अन्य विश्वविद्यालयों का अकादमिक माहौल ऐसा था, जिस पर गर्व किया जा सकता था। इसका श्रेय तब की पूर्ण और विद्वान फैकल्टी को दिया जा सकता है जिनके कार्य में कोई राजनीतिक दखल नहीं हुआ करता था। 1970 के दशक में इसमें गिरावट आनी शुरू हुई और वह अब तक जारी है। हाल के सालों में तो इसमें और भी तेज़ी के साथ गिरावट आई है।

हाल ही में प्रकाशित एक स्तंभ में उस क्षेत्र का विशिष्ट उदाहरण पेश किया गया है, जिसका में कई वर्षों से प्रेक्षक रहा हूं। प्रतिष्ठित जीव वैज्ञानिक, इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी के पूर्व अध्यक्ष और वर्षों मेरे सहकर्मी रहे एम. विजयन ने एक ऐसे विज्ञान विभाग के पतन के बारे में अपनी भावनाएं ज़ाहिर की हैं, जिसने आज़ादी के बाद कुछ बेहतरीन मौलिक योगदान दिए थे। उन्होंने मद्रास विश्वविद्यालय में क्रिस्टलोग्राफी एंड बायोफिज़िक्स विभाग के धीरे-धीरे गुमनामी के सागर में डूबने का सिलसिलेवार वर्णन किया है (दी हिंदू, 20 मई 2012)। इस विभाग की शुरुआत 1952 में हुई थी, जब जी.एन. रामचंद्रन नए भौतिक विभाग की अगुवाई करने बैंगलुरु से मद्रास पहुंचे थे। उस समय वे बमुश्किल 30 साल के रहे होंगे। उन्हें विभाग की कमान संभालने का प्रस्ताव सी.वी. रामन ने दिया था। रामचंद्रन ने जीव विज्ञान, भौतिक शास्त्र और रसायन शास्त्र के मेल से उस विभाग को एक जीवंत शाला में बदल दिया था। उनके द्वारा दिए गए दो योगदानों की चर्चा समकालीन अनुसंधान में आज भी होती है। 1950 के दशक के पूर्वार्द्ध में रामचंद्रन ने कोलाजेन की त्रिकुंडलीय संरचना प्रस्तुत की थी। जीव विज्ञान की दो अन्य प्रसिद्ध कुंडलित रचनाओं - पॉलिंग का प्रोटीन अल्फा हेलिक्स और वाटसन-क्रिक का डीएनए डबल हेलिक्स - के बाद यह संरचना आई थी। इसी की बदौलत मद्रास विश्वविद्यालय के बारे में गर्व से कहा गया था कि उसके पास अब एक चमकता सितारा है। एक दशक के बाद रामचंद्रन मैप सामने आया जिसे संरचनात्मक जीव विज्ञान में एक अमूल्य योगदान माना जाता है।

1960 के दशक तक भारत के सर्वाधिक सक्रिय अनुसंधान केंद्रों में से एक यह केंद्र स्टेट यूनिवर्सिटी के परिसर में स्थित था। इसके अगले दशक की शुरुआत में इसमें तब गिरावट आनी शुरू हुई, जब रामचंद्रन और उनके कई सहकर्मी बैंगलुरु चले आए। भारत का सबसे गौरवशाली विभाग अब पतन की राह पर था। काम करने के इच्छुक और सच्चे अकादमिक लोगों के लिए स्थितियां धीरे-धीरे प्रतिकूल बनती गईं और सबसे महत्त्वपूर्ण बात, फैकल्टी को कम करने के लिए उन्हें रिटायर किया जाने लगा। इससे केंद्र में फैकल्टी का आकार बहुत ही छोटा रह गया।

ऐसे ही और भी सक्षम और समर्थ विभागों की धीमी मौत कई विश्वविद्यालयों में देखी गई। बकौल विजयन 'अनुपयुक्त नियुक्तियां' दूसरी वजह थी, जिसके कारण पूरे देश के विश्वविद्यालयों में स्थित विभागों में तेज़ी से गिरावट आई। राज्यों के विश्वविद्यालय स्थानीय माहौल के कारण कहीं

अधिक दबाव में रहते हैं। इसके विपरीत केंद्रीय विश्वविद्यालयों को सरकार से अपेक्षाकृत अधिक स्वायत्तता मिलती है। उच्च शिक्षा के विस्तार को लेकर जो मौजूदा अभियान चलाया गया है, वह प्रायः नवीन संस्थानों के निर्माण पर केंद्रित है, जबकि पुराने विश्वविद्यालयों को उनके हाल पर छोड़ दिया गया है, सालाना बजट प्रस्तुत करते हुए कभी-कभार भले ही उनके प्रति थोड़ी वित्तीय उदारता दिखा दी जाती है।

पुराने संस्थानों के समान नए संस्थानों के सामने भी सबसे बड़ी समस्या अच्छे और प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी की है। कई बार नए संस्थान अपना पूरा फोकस अनुसंधान पर लगाते हैं और नवनियुक्त फैकल्टी को प्रेरक शिक्षक तो दूर, समर्थ शिक्षक के रूप में विकसित करने पर भी ध्यान नहीं देते।

सरकार और संसद भी इन अनुसंधान संस्थानों को आसानी से डीम्ड युनिवर्सिटी और अकादमियों का दर्ज़ा देने को तैयार हो जाते हैं। ऐसे डीम्ड विश्वविद्यालय डिग्री दे सकते हैं। ऐसा दर्ज़ा पाने की इच्छा के कारण भी विश्वविद्यालय की अवधारणा को झटका लगा है। कई युवा ऐसे परिवेश में काम करना चाहेंगे जहां उनसे अध्यापन कार्य की कोई मांग न हो और बैठे-ठाले प्रोफेसर का ठप्पा लग जाए। ऐसे प्रोफेसरों की जमात का बढ़ना उच्च शिक्षा के लिए अच्छा संकेत नहीं है। रिसर्च में अध्यापन के फायदे कॅरियर में काफी देर से पहचाने जाते हैं।

अगर अध्यापक मिलने में दिक्कत आ रही है तो नए संस्थान अपने लक्ष्य और छात्रों के बढ़ते अरमानों को कैसे पूरा कर पाएंगे? पुराने संस्थानों में भी फैकल्टी धीरे-धीरे कम हो रही है। वे इस समस्या का सामना कैसे कर पाएंगे? अब जबकि भारत की अर्थव्यवस्था में ठहराव नज़र आ रहा है, मितव्ययिता व संसाधनों पर दबाव जैसे शब्द और भी ज़्यादा सुनाई देंगे। ऐसे में पद स्वीकृत करवाना ही कठिन हो जाएगा जिससे फैकल्टी की समस्या और बढ़ेगी।

देश में उच्च शिक्षा में सुधार के प्रयास नेशनल नॉलेज कमिशन, यशपाल समिति और अन्य कई समितियों की अनुशंसाओं के साथ वर्षों पहले ही शुरू हो गए थे। इन अनुशंसाओं में संस्थागत प्रशासन और स्वायत्तता पर विशेष ज़ोर दिया गया था। इस सम्बंध में संसद में लंबित कई विधेयक इस बात के सबूत हैं कि बदलाव की चाहत तो है। लेकिन सच्चे अर्थों में बदलाव महज़ केंद्रीय कानूनों से नहीं आ सकता। बदलाव स्वयं संस्थानों के भीतर से आना चाहिए। इसके लिए उन्हें अपनी स्वायत्तता का इस्तेमाल करना चाहिए। केंद्र और राज्यों में सम्बंधित मंत्रालय बदलाव की इस प्रक्रिया में मात्र सहयोगी हो सकते हैं। दुर्भाग्य से इनमें शायद ही किसी की रुचि उच्च शिक्षा में सुधार की है। केंद्रीय आदेश से जेईई में सुधार बदलाव की इस लड़ाई में शायद पहला कदम हो। ***(स्रोत फीचर्स)***

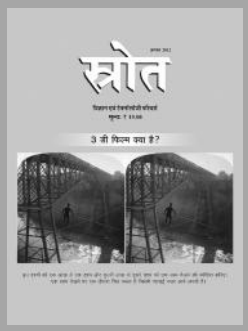

स्रोत के ग्राहक बनें, बनाएं

वार्षिक सदस्यता

व्यक्तिगत 150 रुपए

संस्थागत 300 रुपए

सदस्यता शुल्क एकलव्य, भोपाल के नाम ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से

ई-10,शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल (म.प्र.) 462 016

के पते पर भेजें।